इकाई 6 कल्हण*

इकाई की रूपरेखा

6.0 उद्देश्य

6.1 प्रस्तावना

6.0 *राजतरंगिणी*

6.3 कल्हण की शैली

6.4 *राजतरंगिणी* की अंतर्वस्तु की रूपरेखा

6.5 इतिहासलेखन के रूप में मूल्यांकन

6.6 नवीन दृष्टिकोण

6.7 इतिहास के रूप में काव्य

6.8 नैतिक/नीतिपरक निर्देश के रूप में इतिहास

6.9 सारांश

6.10 शब्दावली

6.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

6.12 संदर्भ ग्रंथ

6.13 शैक्षणिक वीडियो

6.0 उद्देश्य

इस इकाई में हम कल्हण तथा उसकी कालजयी कृति *राजतरंगिणी* पर चर्चा करेंगे। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप समर्थ होंगेः

- *राजतरंगिणी* को कलमबद्ध करने की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि तथा इसमें निहित मंतव्य को जानने में,
- कल्हण द्वारा *राजतरंगिणी* में अपनायी गई पद्धति को समझने में,
- इस ग्रंथ के इतिहासलेखन संबंधी महत्व को समझने में,
- इतिहासकारों द्वारा *राजतरंगिणी* के अध्ययन हेतु अपनाए गए नए दृष्टिकोणें का परीक्षण करने में, और
- इतिहास लेखन की महत्वपूर्ण शैली के रूप में काव्य रचनाओं के महत्व का विश्लेषण करने में।

6.1 प्रस्तावना

1825 में बंगाल रॉयल एशियाटिक सोसाइटी के सदस्य तथा कालिदास की *मेघदूत* तथा *विष्णु पुराण* जैसी संस्कृत रचनाओं के अनुवादक हेरोल्ड हेमैन विल्सन ने कल्हण की *राजतरंगिणी*, जिसे उसने '12वीं शताब्दी के कश्मीर का हिंदू इतिहास' कहा था, के कुछ भागों के अनुवाद का कार्य हाथ में लिया। *राजतरंगिणी* के विषय में विल्सन का यह सुप्रसिद्ध आकलन था कि 'यह अब तक खोजी गई एकमात्र संस्कृत रचना थी जिसे वास्तव में किसी तरह के इतिहास की संज्ञा दी जा सकती है।' कल्हण की इस महान् कृति का इस विद्वान द्वारा किया गया यह विश्लेषण अब भी स्वीकृत माना जाता रहा है तथा अगले 200 वर्षों तक इस दावे को लगभग कोई चुनौती नहीं मिली।

***डॉ. शोनालिका कौल, सैंटर फ़ॉर हिस्टॉरिकल स्टडीज, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली। यह इकाई लेखक के निम्नलिखित शोधकार्यों पर आधारित हैः *द मेकिंग ऑफ़ अर्ली कश्मीरः लैंडस्केप एंड आइडैंटिटी इन द राजतरंगिणी*, 2018 (दिल्लीः ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रैस); ""सीइंग" द पास्टः टैक्स्ट एंड क्वैश्चन ऑफ़ हिस्ट्री इन द "*राजतरंगिणी*"", *हिस्ट्री एंड थ्योरी*, 53: 2, मई 2014, पृ. 194-211; एवं 'हिस्टॉरिकल मैथड्स', पंकज जैन व अन्य द्वारा संपादित *एंसाक्लोपीडिया ऑफ़ इंडियन रिलीजन्स, हिंदुइज़्म एंड ट्राइबल रिलीजन्स*, 2018 (न्यूयॉर्कः स्प्रिंगर)**

ध्यानपूर्वक पढ़ने पर, यद्यपि, इस ग्रंथ के ऐतिहासिक गुणों की यह प्रशंसा वस्तुतः अन्य भारतीय साहित्यिक संस्कृति तथा सभ्यता में इतिहास की अनुपस्थिति का आक्षेप था। इसके कुछ वर्ष पूर्व ही ब्रिटिश साम्राज्यवादी इतिहासकार जेम्स मिल ने अपनी कुख्यात पुस्तक *द हिस्ट्री ऑफ़ ब्रिटिश इंडिया* (1817) में 'पिछड़ी' भारतीय साहित्यिक तथा सांस्कृतिक परंपराओं के विरुद्ध अपनी समकक्ष यूनानी-रोमन तथा यहूदी-ईसाई परम्पराओं, जो अपनी ऐतिहासिक परम्पराओं के लिए विख्यात थीं, के मानकों के बराबर न होने के लिए निंदात्मक रवैया अपनाया था। इसका परिणाम भारतीय अतीत के देशज भारतीय आख्यानों तथा इनके संबंध में विद्यमान रहे दृष्टिकोणें को निम्नतर और अनुपयुक्त मानने में निकला।

मिल तथा विल्सन जैसे विद्वानों की इन टिप्पणियों को उस समय उभर रही इस मिथ्या-अवधारणा तथा दुष्प्रचार को स्पष्ट करने तथा इसका आधार बनाने वाले तत्वों, दोनों, के रूप में समझा जा सकता है कि भारतीय सभ्यता, विशेषकर संस्कृत परम्पराओं, में ऐतिहासिक बोध या चेतना की कमी थीः एक भ्रांतिपूर्ण विचार जो तब से मान्य बना रहा है। ऐसा माना गया कि यह 'कमी' उन अन्य रूढ़छवियों के कारण थीं जो 19वीं शताब्दी में ब्रिटिश औपनिवेशिक सत्ता के स्थापित होने के बाद भारत के बारे में गढ़ी जा रही थीं, जैसे एक ओर तो भारतीयों का भौतिक के बजाय आध्यात्मिक रुचियों की ओर अधिक झुकाव तथा दूसरी ओर भारतीय समाज का स्वयं में परिवर्तनहीन और गतिहीन होना। इनको संयुक्त रूप से भारत में नज़र आने वाले ऐतिहासिक साहित्य के नितांत अभाव के लिए उत्तरदायी माना गया, विशेष रूप से भारत में रचित धर्मग्रंथों, मिथक-शास्त्रों तथा सौंदर्यबोध-संबंधी कृतियों की प्रचुरता की तुलना में।

इस अंतर्निहित पक्षपात के विपरीत नवीन शोधकार्यों (थापर 2014; कौल 2018 क, ख) ने न केवल यह दिखाया है कि प्राचीन भारतीय विद्वानजन इतिहास के लेखन से सुपरिचित थे बल्कि प्राचीन भारतीय समाजों के संबंध में उपलब्ध ऐसे विभिन्न साक्ष्यों को अपने लेखन-कार्य में सूचीबद्ध किया है जो समय तथा समय को अंकित किए जाने के संबंध में और घटनाओं को भविष्य की पीढ़ियों के लिए सुरक्षित रखने व इतिहासबद्ध करने हेतु एक विशेष रुझान को प्रदर्शित करते हैं।

इसके अतिरिक्त कुछ विद्वानों ने उस वस्तुवादी/प्रत्यक्षवादी (positivist) यूरोप-केंद्रित आधार पर भी सवाल खड़े किए हैं जिस पर इतिहास के आधुनिक विषय ने अतीत का वर्णन करने वाले पारम्परिक भारतीय तरीकों, जैसे मिथकीय और उपदेशात्मक आख्यानों, को खारिज किया है। इसके विपरीत इनका विचार है कि प्रारंभिक भारतीय ऐतिहासिक परंपराओं का विस्तार विभिन्न स्वरूपों में थाः सार्वजनिक अभिलेखों में उत्कीर्ण तथा संरक्षित अत्यधिक सटीक और तथ्यात्मक जानकारी से लेकर आचारशास्त्रीय/शिक्षाप्रद/उपदेशात्मक साहित्य तक। यह सामाजिक तथा राजनीतिक नैतिकता की प्रयोगशाला तथा उचित धर्म निभाने के आह्वान के रूप में मानव इतिहास का साहित्यिक निरूपण था (कौल 2018)। इसी पृष्ठभूमि के आलोक में प्रारंभिक भारतीय इतिहास लेखन की इन दो प्रवृत्तियों के उदाहरण के रूप में कल्हण के 12वीं शताब्दी के इस महान् ग्रंथ की इस इकाई में चर्चा की गई है।

6.2 *राजतरंगिणी*

राजतरंगिणी (शब्दशः *राजाओं की नदी*) शास्त्रीय (classical) संस्कृत भाषा में 1148-50 सी ई में लिखा गया *महाकाव्य/प्रबंध* है। इसकी रचना कश्मीरी पंडित कल्हण द्वारा की गई थी। ऐसा कहा जाता है कि वह कश्मीरी राजा हर्ष (लगभग 1089-1101 सी ई) के दरबार में चंपक नाम के एक भूतपूर्व मंत्री का पुत्र था, यद्यपि ऐसा प्रतीत होता है कि कल्हण स्वयं कभी किसी राजा की सेवा में नहीं रहा था।

आठ हज़ार श्लोकों, जो असमान रूप से आठ पुस्तकों या खंडों में बँटे हुए हैं, में विस्तृत *राजतरंगिणी* उन राजवंशों का विवरण है जिन्होंने कश्मीर में कवि द्वारा वर्णित एक कल्पनात्मक शुरुआत से लेकर कवि के काल तक शासन किया था। दूसरे शब्दों में, यह कृति कश्मीर घाटी के प्राचीन और पूर्व मध्यकालीन इतिहास के लगभग 2000 वर्षों का विवरण देती है।

6.3 कल्हण की शैली

कल्हण की *राजतरंगिणी* की उत्कृष्ट विशेषताओं में से एक है इसका स्वयं पर प्रकाश डालना एवं आत्मचिंतनशील होना। इसकी शुरुआत प्रस्तावना से होती है जो स्पष्ट रूप से अपना प्रयोजन, अपनी

शैली और इतिहास के अपने दर्शन और नज़रिए को सामने रखती है। प्रथमतः यह हमें बताती है कि निश्चित रूप से यह कश्मीरी इतिहास पर लिखी जाने वाली पहली कृति नहीं है। वास्तव में, *राजतरंगिणी* उससे पूर्व लिखी गई ऐसी ही कम से कम 11 संस्कृत रचनाओं की मंत्रणा तथा उनके संशोधन पर आधारित थी। यद्यपि इन पुराने ग्रंथों में से केवल एक (*नीलमत पुराण*, आठवीं शताब्दी सी ई) ही अब उपलब्ध है तथा केवल एक अन्य लेखक क्षेमेंद्र (11वीं शताब्दी सी ई) ही ऐतिहासिक रूप से सुज्ञात है। इससे यह संकेत मिलता है कि इतिहास लेखन की एक स्थापित पूर्व-आधुनिक और दीर्घ परम्परा रही है।

इसके अतिरिक्त अपनी अंतर्वस्तु तथा संदेश को आकार देने हेतु *राजतरंगिणी* ने व्यापक रूप से अन्य अखिल भारतीय संस्कृत साहित्य जैसे *शास्त्र* (राज्य-नीति तथा विधि-संबंधी निर्देशात्मक *प्रबंध* साहित्य), *नीति* (राजनीतिक तथा नैतिक दृष्टांत) तथा *इतिहास* (अतीत-संबंधी विवरण) और पीढ़ी-दर-पीढ़ी राजाओं के नामों की कालानुक्रमिक सूची को अभिलिखित करने वाली *वंशावली* परम्परा से भी बहुत कुछ ग्रहण किया है। वास्तव में, *राजतरंगिणी* को इन विभिन्न शैलियों और *काव्य* (उच्च सौंदर्यबोध से सम्पन्न गद्य तथा पद्य) के बीच विचरण करते हुए देखा जा सकता है जो इसे एक जटिल ग्रंथ बनाता है। इस सबसे इस कश्मीरी महाकाव्य में सुदृढ़ अंतर्ग्रंथात्मक संबंधों के क्रियाशील होने का संकेत मिलता है जो संस्कृत की कई साहित्यिक तथा दार्शनिक परम्पराओं को साथ में लाने का आभास देता है, न कि उनसे दूर जाने का या उनके बीच अपवाद होने का। *राजतरंगिणी* के संबंध में विद्वानों की प्रमुख विद्धता व मंतव्य, जो विवादास्पद ढंग से सम्पूर्ण संस्कृत साहित्य के बीच इसे एक अनूठा ग्रंथ मानते हैं, को ध्यान में रखते हुए यह बिंदु अत्यंत महत्वपूर्ण है। इस पर आगे आने वाले ऐतिहासिक मूल्यांकन वाले खंड में और अधिक चर्चा की गई है।

अन्य दिलचस्प पहलू यह है कि कवि कल्हण शिलालेखों और ताम्रपत्रों पर उत्कीर्ण लेखों (***शासन***) की सहायता लेने का दावा करता है जिनमें राजकीय भूमि-अनुदानों को दर्ज किया गया था और जो पुरातन समय से सुरक्षित बचे हुए थे। यह स्रोत-सामग्री का दिलचस्प पुनरांकन है जो ऐसे ग्रंथ की रचना में प्रयुक्त हुई सामग्री की झलक प्रदान करता है जिसे आज स्वयं इतिहास की स्रोत-सामग्री के रूप में देखा जाता है। कल्हण ने इन अभिलेखों का उपयोग राजाओं, रानियों, मंत्रियों तथा सेनापतियों द्वारा विभिन्न मतों, जैसे बौद्ध, शैव, वैष्णव तथा सौर (सूर्योपासना), से संबंध रखने वाले धार्मिक संस्थानों को दिए गए दानों एवं उपहारों को लेखबद्ध करने के लिए किया है।

इतिहास लेखन के दर्शन के संबंध में कल्हण कहता है कि 'मोह तथा विमोह, दोनों, का त्याग करते हुए अतीत का वर्णन करने में कवि की वाणी अविचलित रहनी चाहिए' (*राजतरंगिणी* 1.7)। आधुनिक विद्वानों ने इसे निष्पक्षता या वस्तुनिष्ठता को एक इतिहासकार के गुण के रूप में पहचानने वाले कथन के रूप में पढ़ा है। बहरहाल, यह ध्यातव्य है कि कल्हण इसे काव्यात्मक सद्गुण के रूप में पेश करता है। यह संतुलन (*वैराग्य*, जिसे कविता में शांत रस या निर्विकार सौंदर्य के तौर पर रेखांकित किया गया है) की अवस्था का संकेत करता है जिसकी उस समय के संस्कृत काव्य सिद्धांत (*अलंकारशास्त्र*) विशेष प्रकार की कविता रचने वाले कवियों के उपयोग हेतु अनुशंसा करते थे।

6.4 *राजतरंगिणी* की अंतर्वस्तु की रूपरेखा

महत्वपूर्ण है कि कश्मीर पर शासन करने वाले प्रत्येक वंश के प्रत्येक राजा या रानी के राज्यारोहण और शासनकाल के अंत की तिथि निर्धारित करने के लिए परंपरागत भारतीय पंचांगों या संवतों, जैसे ***कलियुग*** और ***शक संवत***, का उपयोग करते हुए कल्हण इस क्षेत्र के लिए निरंतरता लिए हुए एक कालानुक्रम पेश करता है। इन वंशों में गोनंदिया (Gonandiyas) (5वीं-6वीं शताब्दी), कार्कोट (7वीं-9वीं शताब्दी), उत्पल (9वीं शताब्दी सी ई) और लोहार (10वीं-12वीं शताब्दी सी ई) शामिल हैं। कश्मीर के कुछ महत्वपूर्ण शासक जिनके विषय में हम *राजतरंगिणी* के कारण जानते हैं उनमें मौर्य सम्राट अशोक (चौथी शताब्दी बी सी ई) जो एक ऐसे साम्राज्य का सम्राट था जिसका विस्तार लगभग सम्पूर्ण उपमहाद्वीप में था, कुषाण राजा कनिष्क (दूसरी शताब्दी सी ई) तथा हूण राजा तोरमाण और मिहिरकुल (छठी शताब्दी सी ई) शामिल हैं जिनमें से सभी ने पराक्षेत्रीय भारतीय राज्यों पर शासन किया था और कश्मीर को उनमें एकीकृत किया था। घाटी में पाए जाने वाले स्वर्ण, रजत तथा मिश्रित सिक्कों के संग्रह इन शासकों की कश्मीर में उपस्थिति की पुष्टि करते हैं।

राजतरंगिणी कुछ क्षेत्रीय किंतु शक्तिशाली कश्मीरी राजाओं के विषय में भी जानकारी देती है जिनमें ललितादित्य मुक्तपीड (8वीं शताब्दी सी ई) प्रमुख था जिसके बारे में कहा गया है कि उसने अपार विजयों और अभियानों को संचालित किया जिनका विस्तार एक ओर पूर्वी भारत तक और दूसरी ओर मध्य तथा पश्चिमी एशिया (सिंकियांग/शिंजियांग, ईरान) तक था। हम राजा अवंतिवर्मन (9वीं शताब्दी सी ई) के विषय में भी सुनते हैं जो घाटी में बाढ़ को नियंत्रित करने के उपाय करने हेतु विख्यात है और प्राचीन विश्व की कुछ शक्तिशाली महिला शासकों में से एक रानी दिद्दा (10वीं शताब्दी सी ई) का उल्लेख भी मिलता है।

कल्हण इन शासकों के समय में होने वाली कई प्रमुख घटनाओं और बाद के शासकों तथा दरबारियों की नीतियों, कृत्यों तथा संघर्षों का वर्णन करता है। वह न केवल इनका विवरण देता है बल्कि इनके सामान्य तथा व्यक्तिगत कारणों को समझने का प्रयास भी करता है और इनके लिए कई प्रकार की सम्भव ऐतिहासिक व्याख्याएँ प्रस्तुत करता है। ऐसा करते हुए, जैसा कि हम देखते हैं, कल्हण अपने मूल्यांकन के निष्पक्ष होने का दावा करता है।

किंतु वस्तुतः अपने निर्विकार होने के दावे के विपरीत कल्हण की शैली कश्मीर के राजाओं तथा रानियों के अच्छे या बुरे कृत्यों का वर्णन करते हुए उनसे उसके गहरे व्यक्तिगत जुड़ाव का संकेत करती है। हम ऐसा कह रहे हैं क्योंकि *राजतरंगिणी* अत्यधिक आलोचनात्मक कृति है और निरंतर उन घटनाओं के गुण-दोष का विवेचन करती है जिनका इसमें वर्णन है। यह सद्कर्मों के लिए प्रशंसा और गुणगान का स्वरूप लिए हुए है तो दुष्कर्मों के लिए निंदा और तिरस्कार का भी। निंदा को घृणित या अशिष्ट उपमानों के साथ भी अभिव्यक्त किया गया है जो संस्कृत काव्य में बहुत ही असामान्य तत्व है। सदाचरण का समर्थन करना स्पष्ट तौर पर *राजतरंगिणी* के ग्रंथीय तथा ऐतिहासिक मंतव्यों का निर्धारक हिस्सा था।

राजतरंगिणी केवल अभिजात्य वर्ग की ही कहानी नहीं है। इसने कश्मीर के लम्बे इतिहास में उत्तरोत्तर सिंहासनारूढ़ होने वाले न्यायशील और उदार राजाओं के साथ ही आततायी और शोषक राजाओं के अधीन प्रजा की परिस्थितियों पर भी गहन रूप से ध्यान केंद्रित किया है। वास्तव में इस रचना में जनकल्याण (*प्रजानुपालनम*) किसी राजा के शासन के मूल्यांकन की एक स्थायी और महत्वपूर्ण कसौटी रही है।

बोध प्रश्न-1

1) कश्मीर के इतिहास का वर्णन करने हेतु कल्हण द्वारा अपनायी गई शैलियाँ क्या थीं?

....

....

....

2) *राजतरंगिणी* में प्रकट होने वाले कल्हण के समय से संबंधित तथा कालक्रम-संबंधी विचारों का परीक्षण कीजिए।

....

....

....

3) क्या आप सहमत हैं कि *राजतरंगिणी* अत्यधिक आलोचनात्मक काव्य-कृति है? टिप्पणी कीजिए।

....

....

....

6.5 इतिहासलेखन के रूप में मूल्यांकन

मुख्य रूप से तीन कारण थे, नामतः इस ग्रंथ द्वारा कालानुक्रम का रखा गया ध्यान, कार्य-कारण सिद्धांत (causation) और (कथित) वस्तुनिष्ठता, जिनके आधार पर यूरोपीय प्राच्यवादी इतिहासकारों,

जो 19वीं शताब्दी से इस ग्रंथ का अध्ययन कर रहे थे, ने *राजतरंगिणी* को प्राचीन भारत से संबंध रखने वाला इतिहास का एक समुचित पहला और एकमात्र ग्रंथ कहा। उनका विश्वास था कि 3000 वर्षों की संस्कृत साहित्यिक संस्कृति में *धर्मशास्त्रों* और मिथकों, जिन पर अन्यथा उन्होंने पूर्णतः इतिहास-बोध से रहित होने का आक्षेप लगाया था, में इसके गुथे होने के बावजूद यह बाद का ग्रंथ एक अनोखा अपवाद था। उन विद्वानों, जिन्होंने भारत में इतिहास की प्रथम कृति के रूप में *राजतरंगिणी* का चरित्रांकन किया था, में हेरोल्ड विल्सन (1825), जॉर्ज बुहलर तथा मार्कस ऑरेल स्टाइन (1892, 1900) शामिल हैं। उपर्युक्त में से अंतिम विद्वान ने *राजतरंगिणी* का आलोचनात्मक संस्करण प्रकाशित करवाया तथा अंग्रेज़ी में इसका सम्पूर्ण अनुवाद किया जिसे आज तक पढ़ा जाता है।

इस ग्रंथ के अनूठेपन और ऐतिहासिक चरित्र का इनके द्वारा किए गए (त्रुटिपूर्ण) मूल्यांकन को 20वीं शताब्दी के दौरान आर्थर लेवेलिन बाशम (1961) जैसे भारतविदों तथा विभिन्न विचारधाराओं का अनुसरण करने वाले भारतीय इतिहासकारों, जैसे राष्ट्रवादी इतिहासकार रमेश चंद्र मजूमदार (1961) तथा मार्क्सवादी इतिहासकार रोमिला थापर (1983), द्वारा अपनाया गया और प्रतिध्वनित हुआ। सम्भवतः पश्चिमी विषय-संबंधी मानकों के समकालीन साबित होने के संघर्ष में उन्होंने प्रशंसा-भरे ऐसे कथनों को व्यक्त किया, जैसा नीचे उद्धृत किया जा रहा है, जो *राजतरंगिणी* का अध्ययन और अध्यापन करने वाले इतिहासकारों की आने वाली कई पीढ़ियों के लिए धर्मवैधानिक (canonical) बन गएः 'किसी आधुनिक इतिहासकार को भी कल्हण को महान् इतिहासकारों की श्रेणी में रखने में कोई संदेह नहीं होना चाहिए ... (उसके द्वारा) इतिहास के सच्चे आदर्श तथा वास्तविक पद्धति के उचित उपयोग के कारण' (मजूमदार 1961ः 14-25)।

लेकिन, इस प्रकार इस ग्रंथ के अनुभववादी गुणों की प्रशंसा करने के फ़ेर में *राजतरंगिणी* के अध्ययन को समर्पित प्रभावशाली विद्वानों ने 150 सालों तक वस्तुतः उत्तर-प्रबोधन (post-Enlightenment) युग के रांके के प्रभाव से उभरे प्रत्यक्षवाद को 12वीं शताब्दी के एक परम्परागत संस्कृत महाकाव्य पर आरोपित किया। इस प्रक्रिया में उन्होंने इस ग्रंथ के ऐसे पहलुओं, जो इतिहास कैसा होना चाहिए उनके इस विचार के अनुरूप सही नहीं बैठते थे, को अलग किया और 'असफलताओं' तथा 'त्रुटियों' के रूप में परे कर दिया। इसमें काव्य-अलंकारों के सभी पहलू शामिल हैं, जैसे मिथक, वग्मिता (rhetoric) और उपदेशपरायणता जो किसी काव्यात्मक विमर्श के आवश्यक तत्व हैं तथा *महाकाव्य* के रूप में स्वयं *राजतरंगिणी* की योजना में प्रमुख तत्व हैं।

उदाहरण के लिए, मार्कस ऑरेल स्टाइन (1900) का विचार था कि काव्य शैली में *राजतरंगिणी* के वाक्पटुता (rhetoric) और उपदेशात्मक भाग मुख्य कथानक से कटे हुए हैं जो इतिहासात्मक हैं। वहीं बुहलर ने दंतकथाओं और मिथकों का सहारा लेने से इस ग्रंथ के बड़े हिस्से के कालानुक्रम के अनुपयोगी हो जाने और इसके लेखक पर संदेह होने का संकेत किया है। इसका अनुसरण करते हुए रमेश चंद्र मजूमदार (1961ः 22-24) ने कल्हण को एक महान् इतिहासकार की संज्ञा देने के बावजूद उसके द्वारा मिथकों व दंतकथाओं में राजाओं को समाहित करने में झलकने वाली उसकी 'अत्यधिक त्रुटिपूर्ण पद्धति', 'महाकाव्यों और *पुराणों* (अतीत का वर्णन करने वाली प्राचीन भारतीय शैलियाँ) पर उसकी 'अंध आस्था', जादू और चमत्कारों में उसके विश्वास, घटनाओं की व्याख्या 'किसी तार्किक कारण के बजाय' विधि के विधान के आधार पर करने, कर्म-संबंधी हिंदू विश्वास से प्रेरित सामान्य उपदेशात्मक प्रवृत्ति और 'काव्य और अलंकारों में दक्षता के प्रदर्शन-मात्र' की बात कही है। रोमिला थापर (1983) ने भी कल्हण की नैतिक शिक्षा और उपदेशपरायणता को खारिज किया।

इस प्रकार, इतिहास के रूप में स्वीकृत होने के लिए *राजतरंगिणी* को परंपरागत संस्कृत काव्य की छवि से दूर हटना था। यद्यपि पूरी तरह से पश्चिम के आधुनिक वस्तुनिष्ठ इतिहास के विचार से प्रेरित होने, न कि अतीत को देखने के किसी देशीय या प्राचीन दृष्टिकोण से, पर भी 'तथ्यात्मक' (सच्चे) इतिहास तथा कल्पनात्मक (भ्रमपूर्ण) साहित्य के बीच विरोध में अंतर्निहित विश्वास स्वयं 19वीं शताब्दी के यूरोप के लिए नया था और स्वयं अपने प्राचीन शास्त्रीय युग (केवल भारत की बात छोड़ भी दें तो) में प्रचलित पद्धति को नकारता था जहाँ इतिहास को उत्कृष्ट साहित्य का एक रूप माना जाता था और वह भी इसकी सत्यता के मूल्य के प्रति कोई पूर्वाग्रह की भावना रखे बिना। यूरोपीय इतिहास लेखन में आए रांकेवादी मोड़ ने विश्व-भर के

इतिहासकारों पर अपनी छाप छोड़ी, विशेष रूप से जेम्स मिल जैसे साम्राज्यवादियों के लेखन के माध्यम से, जिसने, जैसा कि इससे पूर्व हमने देखा है, बहुत पहले सन् 1817 में ही भारतीय साहित्यिक तथा ऐतिहासिक परंपरा के प्रति अरुचि प्रकट की थी। अतीत के देशीय-भारतीय आख्यानों को अवैध और निम्नतर ठहराने के लिए प्रत्यक्षवाद साम्राज्यवाद के साथ मिल गया था। विडम्बना है कि सम्पूर्ण संस्कृत साहित्य के बीच एक त्रुटिपूर्ण अपवाद के रूप में अलग किए जाने के दौरान इतिहास के रूप में *राजतरंगिणी* एक ऐसे बौद्धिक नज़रिए का सृजन और शिकार, दोनों, बन गई थी जो इस पारंपरिक संस्कृत ग्रंथ को समान रूप से स्वीकारना भी चाहता था और नज़रंदाज़ भी करना चाहता था।

6.6 नवीन दृष्टिकोण

पिछले दो दशकों में विचार की एक नई धारा ने कल्हण के महाकाव्य को उसकी स्वयं की साहित्यिक संस्कृति में स्थापित करने का प्रयास किया है और तदनंतर इतिहास की कृति के रूप में इसका निरुपण किया है। इस प्रक्रिया में इतिहास के विषय की अनुभववादी समझ से इसकी साहित्यिक गुणवत्ता और प्राक्-आधुनिक भारत के ग्रंथों और शैलियों से सामने आने वाली वैकल्पिक ऐतिहासिक पद्धतियों की ओर संक्रमण भी हुआ है।

इस प्रकार किसी विशेष काव्य शैली को ऐतिहासिकता के चिह्न के रूप में पहचानने को महत्व देते हुए संस्कृतविद् व्हिटनी कॉक्स (2013) ने यह तर्क दिया है कि *राजतरंगिणी* के बाद के खंडों में आने वाले 'समास-युक्त, कसावट लिए श्लोक इस विश्व में व्याप्त उत्थान और पतन की सहवर्ती अस्थिरता को प्रकट करने में सफल रहे हैं, स्वयं को पर्याप्त गहन और समृद्ध स्वरूप देते हुए ताकि इसका कुछ अंश तो अभिव्यक्त हो सके।' इससे संसार के औपचारिक अनुकरण (mimesis) का संकेत मिलता है। कल्हण द्वारा इतिहास के साथ किए गए व्यवहार का यही सारतत्व है।

सम्भवतः अधिक आग्रहपूर्ण ढंग से वाल्टर स्लेज (2008) तथा लॉरेंस मैकक्री (2013) *राजतरंगिणी* की प्रकृति तथा उद्देश्य का निर्धारण करने हेतु सामान्य विश्लेषण हेतु संस्कृत की परंपरागत भारतीय श्रेणियों, जैसे *रस-काव्य*, की ओर लौटे हैं। *रस* का तात्पर्य सौंदर्यबोध के नौ स्वरूपों या स्वभावों से है, जैसे वीर *रस*, श्रृंगार *रस*, करुण *रस*, इत्यादि। प्रत्येक संस्कृत काव्य-रचना की कृति को इनमें से कम से कम किसी एक से अभिपूर्ण होना आवश्यक था।

उदाहरण के लिए, वाल्टर स्लेज ने इस काव्य रचना की प्रस्तावना या पूर्वलेख के अपने विश्लेषण में *राजतरंगिणी* द्वारा किसी ऐतिहासिक ध्येय से अधिक सौंदर्यबोध तथा अंततः *मोक्ष* (संसार चक्र से मुक्ति) के उद्देश्य के अनुसरण का तर्क दिया है। वह *शांत रस* या संतुलन की अवस्था के प्रयोग का संकेत करते हैं जिससे अपनी रचना को परिपूर्ण करने का कल्हण का दावा है तथा जो इस भाँति पाठक के लिए *मोक्ष* या मुक्ति की प्राप्ति संभव बनाएगा। उनका कहना है कि कश्मीर के अतीत के राजाओं के जीवन के वर्णन के माध्यम से यही कल्हण का मुख्य ध्येय था। दूसरे शब्दों में, ऐतिहासिक यथार्थ की अपील *राजतरंगिणी* के लिए एक आवश्यक माध्यम है किंतु सौंदर्यबोध के प्रभाव में वृद्धि करने का एक माध्यम मात्र, जैसा कि सत्य के लिए की गई अपील कर सकती है। लॉरेंस मैकक्री भी *शांत रस* पर ध्यान केंद्रित करते हैं लेकिन यह सुझाव देते हैं कि यह कल्हण का समय तथा इतिहास के चक्र के रूप में नैतिक पतन पर निराशावादी विश्वास था जिसने कल्हण को अपने कश्मीर के इतिहास के लिए इस शैली और साहित्यिक विशिष्टता का चुनाव करने को प्रेरित किया। इस प्रकार जहाँ स्लेज *राजतरंगिणी* के ऐतिहासिक पहलू को सौंदर्यबोध-संबंधी उद्देश्यों के अधीन और उन्हें पूर्ण करने का ज़रिया मानते हैं वहीं मैकक्री ठीक इसके विपरीत तर्क रखते हैं।

बोध प्रश्न-2

1) *राजतरंगिणी* के इतिहासलेखन संबंधी मूल्यांकन का संक्षिप्त विवरण दीजिए।

....

....

....

2) कल्हण की *राजतरंगिणी* के अध्ययन-संबंधी नवीन दृष्टिकोण क्या हैं?

....

....

....

6.7 इतिहास के रूप में काव्य

शोनालिका कौल (2014, 2018 क) द्वारा की गई *राजतरंगिणी* की विस्तृत पुनर्व्याख्या दर्शाती है कि संस्कृत काव्य शैली में इतिहास के रूप में काव्य की एक सुस्पष्ट सैद्धांतिक स्थिति थी जिसे प्राक्-आधुनिक विश्व में प्रचलित ऐतिहासिक प्रविधियों पर चिंतन करते हुए ध्यान में रखना आवश्यक है। इसके अतिरिक्त इस सिद्धांत का प्रयोग एक ऐसे नैतिक-राजनीतिक विमर्श के विकास में निहित रहा जो इतिहास-संबंधी ज्ञान की समझ का निर्धारण करता है और इसे परिभाषित करता है कि एक संस्कृति-विशेष, तथापि सार्वभौमिक स्वरूप की संभावना के साथ, में समय तथा मानव कर्मों का यथार्थ ज्ञान किस स्वरूप का होना चाहिए।

कौल दीर्घ काल से चली आ रही तथा संजोयी गई परम्परा की ओर संकेत करती हैं जिसके अनुसार *कवि* एक *ऋषि* की भाँति था जिसके पास आध्यात्मिक सर्वज्ञता तथा दिव्यदृष्टि होती थी। इन शक्तियों के साथ, जो काव्य-संबंधी सहज बोध (poetic intuition; *प्रतिभा*) से उत्पन्न होती थीं, वह वस्तुओं की वास्तविक प्रकृति को जान सकता था और समय के विभिन्न आयामों को भी समझ सकता था – 'जिनके विषय में इससे पूर्व कोई नहीं जान सका था'। ज्ञान-मीमांसा प्राधिकार (epistemic authority) का यह दावा यद्यपि रूढ़िगत था किंतु यह कवि को बीते हुए विषयों के संबंध में चर्चा करने हेतु सक्षम बनाता था, जैसा कि कल्हण के बाद के एक कवि ने काव्य को 'ऐसा दीप कहा है जो अतीत के यथार्थ को प्रकाशित करता है (*काव्यदीपम भूतवस्तु प्रकाशनम्*)'।

इस शैली की स्वयं की समझ को प्रतिध्वनित करते हुए कल्हण लिखता है कि एक सुकवि की प्रकाशमयी कृति के बिना यह दुनिया अंधकार में रहेगी (*सत्कविकृत्याम अंधम जगत्त्वम*) (*राजतरंगिणी* 1.47)। विशेषकर, राजाओं के सद्कर्म हमेशा के लिए अज्ञात रहेंगे यदि कवि न हों जो उनके गौरव को नवजीवन देते हैं, सजीव बना देते हैं तथा उसकी मिसाल पेश करते हैं। कल्हण लिखता हैः

> विख्यात (तथा शक्तिशाली) राजा याद भी नहीं रखे जाएँगे बिना कवि की रचना की कृपा व आश्रय के जो उदात्त होती है तथा जिस पर हम श्रद्धा प्रकट करते हैं (*राजतरंगिणी* I-46)।

इसमें कोई संदेह नहीं कि इन कथनों में हम कवियों के ज्ञान-मीमांसा प्राधिकार का ठोस आग्रह पाते हैं। लेकिन यह इतना ही नहीं है। अतीत तथा उसके ज्ञान का वाचन करने के एक अत्यंत सृजनात्मक दृष्टिकोण के रूप में कवि को न केवल अतीत का ज्ञान रखने वाला माना गया है बल्कि अतीत का 'निर्माता' भी समझा गया है। अतः कल्हण ने उसे *कवि-प्रजापति* या *कवि-वेधा* भी कहा है, अर्थात् कवि-निर्माता (*राजतरंगिणी* 1.4)। वह लिखता हैः 'कवि-निर्माता (poet-creator) के अतिरिक्त बीते हुए युगों को दृश्यमान (*प्रत्यक्षतम्*) बनाने में कौन सक्षम है जो मनोहारी सृजन (*रम्यनिर्माण*) करता हो?' पुनः यहाँ अगोचर अतीत को बोधगम्य बनाने – जो इतिहास की अनिवार्य विशेषता है – की कवि की सृजनात्मक क्षमता पर संस्कृत *काव्य* का विश्वास प्रकट होता है और यह वास्तव में अतीत पर ऐसी टिप्पणी है जो इसे निर्माण या सृजन के रूप में देखती है।

6.8 नैतिक/नीतिपरक निर्देश के रूप में इतिहास

कौल का तर्क है कि कवि की इतिहास तक वास्तविक पहुँच विभिन्न प्रकार के मानवीय उद्देश्यों और विषयों के संबंध में उपदेश प्रदान करने, जैसे पुण्यशीलता (*धर्म*), शक्ति/सत्ता (*अर्थ*) और आनंद (*काम*) के संबंध में, हेतु काव्य की उपदेशात्मक भूमिका से प्रभावित होती है। *राजतरंगिणी* जैसे ग्रंथ के लिए उपदेशों का विशेष विषय राजनीतिक आचरण (*राजधर्म*) था। इस प्रकार *राजतरंगिणी* का मुख्य उद्देश्य मात्र कश्मीर के अतीत का तथ्यपरक ब्योरा देना नहीं था बल्कि एक नैतिक/नीतिपरक (ethical) तथा तार्किक (discursive) आयाम में अभिव्यक्त होने वाले राजनीतिक विचार-विमर्श के रूप में कश्मीर का निरूपण करना था।

अतः, शासन और राजत्व का मूल्यांकन *राजतरंगिणी* में कुछ निश्चित नैतिक सिद्धांतों के आधार पर हुआ है। सदाचार, धर्मपरायणता, उदारता/विनम्रता, नीर-क्षीर का विवेक जो गलत और सही के अंतर को बता सके और जो गुणीजनों, सुचरित्रों और विद्वतजनों को प्रोत्साहन दे, और धर्म का पालन करवाने की इच्छा-शक्ति तथा प्रजा के बीच भय की अनुपस्थिति – ये निजी तथा राजनीतिक मूल्यों के श्रेष्ठ आचारों की वह सूची थी जिससे नैतिक व्यवस्था की ऐसी संकल्पना बनी हुई थी जिसके प्रति राजा की प्रतिबद्धता की आशा की जाती थी।

इसके पश्चात् इन मूल्यों को उदाहरणों तथा प्रतिमानों के एक सिलसिले में पेश किया गया था जिन्हें कल्हण ने कश्मीर के पूर्व राजाओं में खोजा था। उन्हें युग्मों में चिह्नित करते हुए उनकी नैतिकता पर तुलनात्मक दृष्टि डाली गई थी। इस तरह आनंदवादी राजा विभीषण के सिंहासन का उत्तराधिकार उसके नैतिकतावादी पुत्र सिद्ध को मिला। हिंसक राजा मिहिरकुल के बाद धर्मपरायण राजा बक राजसिंहासन पर बैठा। न्यायपूर्ण राजा चंद्रपीड की उसके अत्याचारी पुत्र तारापीड द्वारा हत्या कर दी गई जो उसके राजसिंहासन का उत्तराधिकारी हुआ और भ्रष्ट पिता-पुत्र कलश तथा हर्ष के बाद श्रेष्ठ बुद्धि का स्वामी उच्छल राजा बना। ये सभी ऐतिहासिक राजा थे जिनके बीच सदियों की दूरी थी किंतु वे कवि की व्याख्या की योजना में परस्पर जुड़े हुए थे।

वस्तुतः अपनी ग्रंथीय तथा ऐतिहासिक दृष्टि के केंद्रीय सिद्धांत की कल्हण अपनी कृति की शुरुआत में ही उद्‌घोषणा करता हैः

> समय-समय पर प्रजा के आध्यात्मिक प्रताप एवं योग्यता से ऐसे राजा प्रकट होते हैं जो अव्यवस्था में गहरे डूबे राज्य को व्यवस्थित करते हैं। वे जो अपनी प्रजा के उत्पीड़न पर आमादा होते हैं अपने कुटुंबों व सहबंधियों सहित नष्ट हो जाते हैं; दूसरी ओर, भाग्य दास बन जाता है उनके वंशजों का भी जो वहाँ फिर से व्यवस्था स्थापित करते हैं जहाँ अराजकता होती है... यह (है) प्रत्येक वृत्तांत का लक्षण (*प्रतिवृत्तातम लक्षणम*)... **राजतरंगिणी I.187-89**

इस प्रकार, इसके द्वारा दर्ज किए गए तथ्यों और तिथियों मात्र के लिए व्याख्या करने के बजाय संपूर्ण '*राजाओं की नदी*' को नैतिक दृष्टांतों की धारा के रूप में देखा जा सकता है। ग्रंथ और समय की यह योजनागत व्यवस्था, जो कवि के इतिहास-संबंधी नैतिकतावादी दृष्टिकोण को अभिव्यक्त करती है, ध्यान खींचने वाली है। यहाँ *राजतरंगिणी* ऐतिहासिक तथ्यों के आख्यायीकरण या एक कथानक के ढाँचे के चारों ओर उनके बुने जाने का आभास देती है जो अन्यथा बेतरतीब (random) तथ्यों को एक समरूप संरचना और अर्थ प्रदान करते हैं। इस प्रकार यह मात्र सिलसिलेवार प्रस्तुति से ऊपर उठ जाती है। इस ग्रंथ का इस तरह किया गया पाठ हेडन व्हाइट के कथात्मक आख्यान के रूप में इतिहास के उत्तर-आधुनिक (post-modern) सिद्धांत की अभिपुष्टि करता है। *राजतरंगिणी* का यह कथात्मक स्वरूप अतीत-संबंधी कवि के दृष्टिकोण को साकार करता है, उस अतीत को सांस्कृतिक रूप से मान्य अर्थ प्रदान कर प्रारंभिक भारत में ऐतिहासिकता की गहन समझ को सामने लाता है।

इस परंपरागत समझ में उपदेशात्मक तथा ऐतिहासिक प्रकार्य काव्य के माध्यम से आपस में मिल जाते हैं। परिणामस्वरूप, इसका अर्थ निकलता है कि *राजतरंगिणी* ने ज्ञानशास्त्रीय (epistemic) सत्य की जिस प्रासंगिक प्रविधि को गढ़ा था वह अपने समय में निरपेक्ष, उच्चतर नैतिक साध्य का आह्वान करने में तथा समय सापेक्ष, जितना कि यह अपने संदर्भ से जुड़े ऐतिहासिक अतीत में स्थित थी, दोनों है।

इसके अतिरिक्त *राजतरंगिणी* उपदेशपरायणता की एक बृहत्तर आलोचना भी पेश करती है। उदाहरण के लिए, राजकीय संप्रभुता तथा मानव जीवन की नश्वरता का संकेत करते हुए। राजत्व के ऐश्वर्य और विशेषाधिकार की क्षणिकता पर नैतिक व नश्वरवादी दृष्टि डालते हुए कवि कहता हैः

> शायद ऐसा कोई मानव नहीं होगा जिस पर पहले कृपादृष्टि (राजाओं के हृदय को प्रिय राजलक्ष्मी की) रही हो, बाद में उसने उससे छल न किया हो, जैसा कि अधम की मित्रता में होता है... वह, जो स्नेह से विहीन है, जिसने राजाओं की मृत्यु पर उनका अनुगमन कभी नहीं किया है, जब वे मित्रों तथा आहार के बिना ही परलोक के मार्ग पर होते हैं ... राजभोज के स्वर्ण पात्र तथा राजकोष में संग्रहित अन्य वस्तुएँ – क्यों वे राजा जो दूसरे लोक की यात्रा पर निकल चुके हैं इनका स्वामित्व (अब नहीं) धारण करते हैं?... गले से छीन लिए गए उन (शत्रुओं) के जो मरणासन्न है... कंठाहार, अभिशप्त और अपवित्र, किसके लिए आकर्षक हैं? जो आभूषण पूर्वजों ने छोड़े हैं, मृत्यु निकट देख हुई पीड़ा से निकले आँसुओं से दूषित; इनको स्पर्श करते हुए किसे संताप नहीं होता है?

> मृत्यु के इस एक ही मार्ग पर व्यक्ति उल्टा लटका हुआ है। मैं डूबता हूँ और वह दूसरा डूबने वाला – विभेद का यह विचार (दोनों के बीच) दृश्यमान होता है किंतु क्षणिक ही ... वह जो कल अपने शत्रु का वध करते हुए आनंद में था अंत में जब वह स्वयं मारा जाने वाला होता है अपने ऊपर चढ़े हुए शत्रु को देखता है, कितना वीभत्स है! इस भ्रम पर धिक्कार है
>
> ***राजतरंगिणी* V.6-15, VIII.358-59**

मनुष्य जीवन तथा मानवीय कृत्यों की नश्वरता और क्षणिकता को स्वयं समय की प्रकृति तथा इसके चिरस्थायी गुण अर्थात परिवर्तन पर *राजतरंगिणी* को बखान के रूप में देखा जा सकता है। समय की इस आधारभूत ऐतिहासिक विशेषता का संज्ञान इस ग्रंथ को यह स्वरूप प्रदान करता है कि इसकी शुरुआत ही स्वयं को ऐसे संतुलनकारी उपचार, एक विषहर (antidote) औषधि की भाँति बताने से होती है उन राजाओं के लिए जो संपन्नता या विपन्नता में विभिन्न देशकालों में (*नृपानाम उल्लासे हर्षे वा देशकालयो*) परिवर्तन से आक्रांत रहते हैं (*राजतरंगिणी* I-21)। इस तरह एक निश्चित प्रकार की सार्वभौमिकता तथा अपरिहार्यता इस दृष्टिकोण में इतिहास की दिशा में साथ-साथ बनी रहती है ।

कल्हण की महान् कृति में ऐतिहासिक यथार्थ की ऐसी समझ देखने को मिलती है जिसमें दिव्य तथा सांसारिक, लोकोत्तर तथा लौकिक आपस में गुथे हुए थे, इस सभ्यता द्वारा इतिहास की विधा का जो विशिष्ट सांस्कृतिक प्रकार्य तथा उद्देश्य निरूपित किया गया है उसको ध्यान में रखते हुए। भारतीय ऐतिहासिक पद्धतियों को इस व्यापक अर्थ में ग्रहण करना और समझना होगा। प्रारंभिक भारत के लिए मात्र तथ्य ही सर्वोच्च नहीं थे तथा निश्चित रूप से सत्य का अंतिम वाक्य नहीं थे; नीतिपरक यथार्थ तथा सामाजिक, नैतिक और आध्यात्मिक दुर्बलताओं से पार पा जाना इतिहास को अभिलिखित और सुरक्षित रखने का एक बड़ा उद्देश्य था।

बोध प्रश्न-3

1) '*राजतरंगिणी* का प्रधान उद्देश्य मात्र कश्मीर के अतीत का तथ्यपरक ब्योरा देना नहीं था बल्कि एक नैतिकतावादी उपागम में अभिव्यक्त होने वाले राजनीतिक विचार-विमर्श के रूप में कश्मीर का निरूपण करना था'। टिप्पणी कीजिए।

   ....

   ....

   ....

2) 'इतिहास नैतिक उपदेश प्रदान करता है'। *राजतरंगिणी* के संदर्भ में टिप्पणी कीजिए।

   ....

   ....

   ....

6.9 सारांश

यह इकाई भारत में समृद्ध ऐतिहासिक परम्परा की उपस्थिति पर प्रकाश डालती है, इस विश्वास के विपरीत कि भारत का स्वयं में कोई इतिहास नहीं रहा है। *राजतरंगिणी* भारत में समृद्ध ऐतिहासिक परम्परा का संकेत करती है। प्रस्तुत इकाई में *राजतरंगिणी* का समालोचनात्मक विश्लेषण किया गया है जो संस्कृत की महाकाव्य (*प्रबंध*) शैली में लिखी गई है। कल्हण के पास समय तथा कालक्रम का अपना एक स्पष्ट विचार था। उसने उस समय के ताम्रपत्र अभिलेखों (*शासन*) के रूप में उपलब्ध सभी दस्तावेज़ों का उपयोग भी किया। उसने यह भी स्वीकार किया है कि उसकी कृति ही इस प्रकार की एकमात्र कृति नहीं है बल्कि ऐसी ही कम से कम 11 रचनाओं का अतीत में सृजन हुआ था। उसने इन ग्रंथों से सहायता लेना स्वीकारा है। कल्हण घटनाओं को कारण-प्रभाव के रूप में देखता है। वह राजाओं के अच्छे तथा बुरे, दोनों, कर्मों को नितांत तटस्थता के साथ बताता है। *राजतरंगिणी* केवल कुलीनों की ही चर्चा नहीं करती है बल्कि सामान्य जन भी *राजतरंगिणी* में समान स्थान पाते हैं। यह ग्रंथ यह सीख भी देता है कि ऐतिहासिक ग्रंथों का केवल तथ्यों की उपस्थिति के आधार पर मूल्यांकन नहीं करना चाहिए। इसके बजाय इसे व्यापक संदर्भ में रखकर समझना चाहिए जो अलौकिक और लौकिक, दोनों, पर प्रकाश डालता है।

6.10 शब्दावली

शासन	एक राजसी लेख या राजकीय आदेश। ये सामान्यतः अभिलेखों/उत्कीर्ण लेखों के रूप में ताम्रपत्रों या शिलाओं पर उत्कीर्ण किए हुए पाए जाते हैं
कलियुग	हिंदू युग चक्र में अंतिम युग। इससे पूर्व *द्वापर, त्रेता* और *कृत* (*सत्य*) युग आते हैं
शक संवत	*शक संवत* की उत्पत्ति का विषय अत्यंत विवादित रहा है। इसकी शुरुआत को अब व्यापक रूप से राजा चश्तन (Chashtana) के सिंहासनारोहण (78 सी ई) से जोड़ा जाता है जिसने गुजरात के कच्छ क्षेत्र में शासन किया था

6.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न-1

1) देखें भाग 6.3

2) देखें भाग 6.4

3) देखें भाग 6.4

बोध प्रश्न-2

1) देखें भाग 6.5

2) देखें भाग 6.6

बोध प्रश्न-3

1) देखें भाग 6.7

2) देखें भाग 6.8

6.12 संदर्भ ग्रंथ

बाशम, आर्थर लेवेलिन, (1961) 'द कश्मीर क्रॉनिकल', सी. एच. फ़िलिप्स (संपा.), *हिस्टॉरीयंस ऑफ़ इंडिया, पाकिस्तान एंड सीलोन* (लंदनः ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस), पृ. 57-65.

कॉक्स, व्हिटनी, (2013) 'लिटरेरी रेजिस्टर एंड हिस्टॉरिकल कॉन्सिएशनेस इन कल्हणः अ हायपोथीसिस', *इंडियन एकोनॉमिक एंड सोशल हिस्ट्री रिव्यू*, 50, 2, पृ. 131-60.

कौल, शोनालिका, (2018 क) *द मेकिंग ऑफ़ अर्ली कश्मीरः लैंड्स्केप एंड आयडेंटिटी इन द राजतरंगिणी* (दिल्लीः ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस).

कौल, शोनालिका, (2018 ख) 'हिस्टॉरिकल मैथड्ज', पंकज जैन तथा अन्य द्वारा संपा., *एन्सॉइक्लोपीडिया ऑफ़ इंडियन रिलीजंस, हिंदूइज़्म एंड ट्राइबल रिलीजंस* (न्यूयॉर्कः स्प्रिंगर).

मैकक्री, लॉरेन्स, (2013) 'शांत रस इन द *राजतरंगिणीः* हिस्ट्री, एपिक एंड मॉरल डिके', *इंडियन एकोनॉमिक एंड सोशल हिस्ट्री रिव्यू*, 50, 2, पृ. 179-99.

मजूमदार, रमेश चंद्र, (1961) 'आइडियाज़ ऑफ़ हिस्ट्री इन संस्कृत लिटरेचर', सी. एच. फ़िलिप्स (संपा.), *हिस्टॉरियंस ऑफ़ इंडिया, पाकिस्तान एंड सीलोन* (लंदनः ऑक्सफ़ार्ड यूनिवर्सिटी प्रेस), पृ. 13-21.

स्लेज, वाल्टर, (2008) 'इन द गाइज़ ऑफ़ पोएट्रीः कल्हण रिकंसिडर्ड', वाल्टर स्लेज (संपा.), *शास्त्रारंभः एंक्वायरीज़ इंटू द प्रीऐम्बल इन संस्कृत* (वीज़बाडनः हरस्टोवित्ज़ वेर्लग), पृ. 207-44.

स्टाइन, मार्कस ऑरेल, (संपा. व अनु.) (1960 [1892, 1900]) *कल्हणस राजतरंगिणी ऑर क्रॉनिकल ऑफ़ द किंग्स ऑफ़ कश्मीर*, संस्करण 2 (दिल्लीः मुंशीराम मनोहरलाल [प्रथम संस्करण, बम्बई]).

थापर, रोमिला, (1983) 'कल्हण', मोहिबुल हसन (संपा.), *हिस्टॉरियंज़ ऑफ़ मिडीवल इंडिया* (दिल्लीः मीनाक्षी प्रकाशन), पृ. 52-62.

थापर, रोमिला, (2014) *द पास्ट बिफ़ोर असः हिस्टौरिकल ट्रडिशंज़ ऑफ़ अर्ली नॉर्थ इंडिया* (रानीखेतः परमानेंट ब्लैक).

व्हाइट, हेडेन, (1987) द *कॉटेंट ऑफ़ द फ़ॉर्मः नैरटिव डिस्कोर्स एंड हिस्टॉरिकल रेप्रेज़ेंटेशन* (बाल्टीमोर और लंदनः जॉन हॉपकिंस यूनिवर्सिटी प्रेस).

विल्सन, हेरोल्ड एच., (1825) 'एन एसे ऑन द हिंदू हिस्ट्री ऑफ़ कश्मीर', *एशियाटिक रिसर्चेज*, 15, पृ. 1-119.

6.13 शैक्षणिक वीडियो

राजतरंगिणीः रिवर ऑफ़ किंग्स
https://www.youtube.com/watch?v=6VUyyuUn-AU

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY